International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 10-09-2023, Accepted: 25-09-2023, Published: 11-10-2023
Volume 9, Issue 5, 2023, Page No. 46-48

'धरती हाँफ रही है' में पर्यावरणीय चेतना

कुलदीप कौर
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, सैंटर फॉर डिस्टैंस एंड आनलाईन ऐजुकेशन, पंजाबी विश्वविद्यालय पटियाला, पंजाब, भारत

सारांश
समकालीन हिन्दी कविता सामाजिक यथार्थ की कविता है। यह कविता उन सभी सामाजिक प्रश्नों और मुद्धों के रू– ब– रू होती है जिनसे मानवीय समाज प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित और प्रभावित होता है। इस युग के कवि ने जहाँ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विघटन को उभारा है वहाँ आधुनिक दौर को सबसे गंभीर समस्या पर्यावरण प्रदूषण को भी अभिव्यक्त किया है। विश्व स्तर पर इस समस्या के समाधान के लिए चिंतन हो रहा है। क्योंकि प्रकृति और मनुष्य का गहरा संबंध है। प्रकृति की गोद में ही व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास होता है। मानवीय जीवन के आधार पाँच तत्वों (पानी, मिट्टी, जल, वायु, आकाश) का निर्माण भी पर्यावरण में ही होता है। प्राकृतिक संवरा के संरक्षण के लिए चेतन कवि बलदेव वंशी की रचना धरती हाँफ रही है में पर्यावरीय चेतना को विश्लेषित करना ही प्रस्तुत शोध पत्र का लक्ष्य है।

मूल शब्दः पर्यावरीय चेतना, समकालीन कविता, प्रकृति, प्रदूषण

भूमिका

इक्कीसवीं सदी का मनुष्य मंगल और अमंगल दोनों दृष्टियों से उल्लेखनीय है। विज्ञान और तकनीक की निरंतर प्रगति ने मानव जीवन को लगातार सुविधाजनक बनाया है। POWER POINT INFORMATION ने पूरी दुनिया को एक गांव में परिवर्तित कर दिया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने हमारे बाजारों को समृद्ध कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप आज व्यक्ति की उन्नति की संभावनाएं बढ़ गई हैं। भौगोलिक सीमाएं और नैतिक बंधन उसकी जीवन पद्धति में बाधक नहीं बनते। लेकिन हम इसके अमंगल पक्ष को देखें तो पायेंगे कि जब से नवनिर्माण आया है तब से आर्थिक असमानता तेज़ी से बढ़ी है। बाज़ार व्यवसाय ने व्यक्ति को आत्म केन्द्रित कर दिया है जिससे उसका सामाजिक और सांस्कृतिक ह्रास हुआ है। आपसी सहयोग की भावना खत्म हो गई है। परंपरागत पारिवारिक ढाँचा नष्ट–भ्रष्ट हो चुका है, रिश्ते नाते अर्थ आधारित हो चुके हैं। रिश्ते DISPOSAL CULTURE की भेंट चढ़ चुके हैं। घर का वृद्ध व्यक्ति स्वतंत्रता का सबसे बड़ा बाधक माने जाने लगा है, घर में उसके लिए कोई स्थान नही अतरू वह वृद्धाश्रमों में पनाह लेने लगा है। हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर माइकेल जे.सैंडल के अनुसार, "हम उस कल में रह रहे हैं, जहाँ लगभग हर चीज़ को खरीदा– बेचा जा सकता है। विगत तीन दशकों के दौरान बाज़ार और बाज़ार मूल्य हमारे जीवन पर अभूतपूर्ण रूप से हावी हैं। समाज से वे स्थान और संसाधन तेजी से लापता होते जा रहे हैं जो विभिन्न समुदायों और आम वर्गों के लोगों को एक साथ लाने और अपना सुख– दुख बांटने में बड़ी भूमिका निभाते थे।"1 अर्थात् उपभोक्तावादी संस्कृति ने प्रेम, करूणा, दया, सहिष्णुता और त्याग आदि हमारे श्रेष्ठतम मूल्यों को नष्ट किया है। साहित्य में भी वर्तमान युग की इस कड़वी सच्चाई की अभिव्यक्ति मिलती है।

अद्यौगिकीकरण, शहरीकरण, भूमंडलीकरण, बाज़ारवाद और बढ़ती हुई जनसंख्या ने इस युग में जिसे सर्वाधिक प्रभावित किया है वह है –पर्यावरण। पर्यावरण का मानवीय जीवन में महत्तवपूर्ण स्थान है। क्योकि प्रकृति की गोद में ही उसका सामाजिक और सांस्कृतिक विकास होता है। प्रकृति और मनुष्य का नालिनाभबद्ध रिश्ता है। अगर हम प्राचीन काव्य और धार्मिक ग्रंथों पर दृष्टिपात करें तो उनमें मनुष्य और पेड़ पौधों तथा जीव–जंतुओं के अंतर्संबंधों को प्रदर्शित किया गया है। गुरू नानक वाणी में तो प्रकृति के साथ आत्मीय संबंध को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया है–

"पवन गुरू पानी पिता/माता धरत महत
दिवस रात दोए/दाई दाया/खेले सगल जगत।"2

परन्तु अब स्थिति इसके विपरीत है, मनुष्य की भौतिकवादी और बाज़ारी मानसिकता ने प्रकृति के साथ संबंध को तोड़ लिया है। मनुष्य ने अपने 'लाभ और लोभ' के लिए प्रकृति का मनचाहे ढंग से उपयोग किया है। उत्पादन वृद्धि और जनसंख्या वृद्धि ने प्राकृतिक वातावरण को प्रदूषित करने में बहुत बढ़ी भूमिका निभाई है। डॉ. आलोक कुमार वंसल के अनुसार, "मनुष्य ने अपने तकनीकि विकास के बल पर आर्थिक विकास के उच्च शिखर को छूने हेतु– प्राकृतिक संसाधनों का तेज़ी के साथ अंधाधुंध शोषण किया है तथा वह यह भूल गया है के इन संसाधनों पर केवल मानव जाति की वर्तमान पीढ़ी का ही अधिकार नहीं वरन् उस पर भविष्य में आने वाली मानव पीढ़ियों का भी नैतिक अधिकार है।"3 पर्यावरण वैज्ञानिकों का यह मानना है कि आने वाले समय में लोग पीने वाले पानी के लिए मारामारी करेंगे अर्थात् यदि पर्यावरण हस्तक्षेप पर नियंत्रण नहीं किया गया तो 21वीं सदी के अंत तक मानव अस्तित्व खतरे में होगा।

डॉ. बलदेव वंशी जो मूलत कवि हैं, समकालीन कविता में अपनी पहचान बना चुके हैं। विचार कविता (1973) को आंदोलन के प्रमुख हस्ताक्षर होने के साथ विचार कविता के सैद्धांतिक पक्ष पर भी विचार किया है उन्होंने विचार को ऐसा हथियार माना है जो समकालीन षड़यंत्रों और मुखौटों को बेनकाब करके यथार्थ के साथ सीधा साक्षात्कार करता है। उन्होने कविता की लक्ष्यहीनता, प्रचारात्मक रवैये और आक्रामक शब्दावली के स्थान पर वस्तु स्थिति और परिवेश को जाँचने परखने वाली पैनी दृष्टि पर बल दिया है। कवि के शब्दों में, "अनुभव की धरती पर ही विचार जन्म लेते है। विचार हवा में तैरते नहीं फिरते कि उन्हें पकड़ लिया और कविता में जड़ दिया। वे जीवन यथार्थ की ही उपज होते हैं और साहित्य और कविता अपने परिवेशगत संदर्भों और अनुभवों से ही चरितार्थ होते हैं।"4

"समकालीन कविता में प्रकृति का 'संदर्भ' मात्र आलम्बन या उद्दीपन का नहीं है, वरन् वह सोच और संवेदन का स्रोत है, वह

एक प्रकार की शक्ति या नियति है जो लगातार मानवीय संदर्भों में जुड़कर व्यापक परिदृष्य उपस्थित करती है तो दूसरी ओर अपनी क्रियाओँ, व्यापारों तथा पदार्थो के द्वारा किसी न किसी सत्य को व्यंजित करती है।"[5] इस कविता में समाज में यहां शोषण है, अव्यवस्था है, अमानवीयता है, दोहन है वहां पूरी शक्ति से प्रहार किया है और मूल्यों की तलाश की है। डॉ.बलदेव वंशी ने काव्य के धरातल पर सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडम्बनाओं को बड़ी सूक्षम पैनी दृष्टि से परखा है। कवि ने अपनी रचनाओं में प्रकृति और मनुष्य की संवेदनात्मक पहचान को अनावृत करते हुए उसमें सृजनात्मक आत्मीयता चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है। डॉ. वीरेन्द्र सिंह के अनुसार, "बलदेव वंशी के रचना संसार में प्रकृति का रूपांतरण प्रेक्षण और सोच संवेदन के संयुक्त धरातल पर हुआ है। चाहे वह प्रकृति का कोई दृश्य हो अथवा प्रकृति घटनाओं और पदार्थों का ग्रहण है, उसके द्वारा कवि किसी न किसी वृहत्तर अर्थ को व्यंजित करना चाहता है।"[6] उन्होंने प्रकृति के अनेक बिंबों, प्रतीकों और प्राकृतिक व्यापारों को अपने रचनात्मक फलक पर रेखांकित किया है। नदी समुन्द्र, लहर, पेड़, पक्षी, हवा, धरती, आकाश, पहाड़, बर्फ, घाटियां आदि कुछ ऐसे ही शब्द प्रयोग है, जिनके द्वारा चेतना, संवेदना और स्पंदन के लयात्मक आयामों को स्पर्श किया है। कवि वंशी पृथ्वी को एक ऐसी इकाई मानता है जो हमें अनेक प्रकार की संपदाओं को पूर्ण करती है। उनके मतानुसार, "पहाड़, पेड़, पशु, पक्षी प्राणी आदि के अपने–अपने सकेन्द्रक हैं, सतत विकासमान, परस्पर संवादरत। यों समग्र एक इकाई हैं। धरती। एक अद्वितीय संवेदित वाद्य। गूंजता एक गीत। प्रवहित एक नाव। एक सामूहिक प्रार्थना घर गुंजरित।"[7] परन्तु आधुनिक सभ्यता के विकास में पर्यावरण को बुरी तरह प्रदूषित कर दिया है। परिणामतरू प्रकृति और मनुष्य के बीच का संवाद टूट गया है।

'धरती हाँफ रही है'(2007)काव्य संग्रह में कवि ने पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को बड़ी सजीवता से रेखांकित किया है। इस काव्य संग्रह से पूर्व 'कहीं कोई आवाज़ नहीं'(1984) 'हवा में खिलाती लौ' (1989) में भी कवि ने प्राकृतिक दोहन की समस्या को अभिव्यक्त किया है। कवि बलदेव वंशी की कविताओं में पर्यावरण के साथ अत्यंत गहरा और सहज संबंध देखा जा सकता है। धरती हाँफ रही है, रक्त सनी धरती बनाम ....,कूड़ा कचरा और कोंपले, और प्रेम इत्यादि कविताओं में उनकी पर्यावरण की प्रति चिंता मुखर होती है। धरती के साथ होने वाली छेड़–छाड़ कवि व्यक्त करते हुए लिखता है–

"पहले से अधिक घातक/पहले से अधिक पातक मनुष्य
बढ़ते जा रहे/धरती पर.....
और धरती बुरी तरह काँप रही है/पीड़ाओं से घिरी
बे–तरह हाँफ रही है!....."[8]

कवि को धरती वह नांव प्रतीत होती है जिसके द्वारा उसने लंबी यात्राएं की है किन्तु अब आधुनिक युग में यह संवाद टूट गया है। 'रक्तसनी धरती बनाम...' कविता में मनुष्य का प्रकृति के साथ जो संबंध था उसके टूट जाने का अहसास है और वह पेड़ से शक्ति, धैर्य और भक्ति जैसे गुणों को मांगता है ताकि वह इस विसंगतियों भरे जंगल रूपी समाज में मानवीयता पैदा कर सकेरू

"अपने दृश्य –अदृश्य असंख्य घावों में सजा
वृक्ष के भीतर का वृक्ष बाहर आया
मुझे उंगली पकड़
हाहाकार भरे जंगल/और रक्तसनी धरती में
लाकर बो गया।"[9]

'कूड़ा, कचरा और कोंपले' कविता में महानगरों में चारों तरफ फैले कचरे को प्रदूषण का बहुत बड़ा कारण बताया है। मनुष्य की जीवन शैली के कारण लज्जित होती धरती की पीड़ा को व्यक्त करते हुए–

"महानगरीय कचरे में/पॉलिथीन–
धरती पचा नहीं पाई। इस बार। इत्ते वर्षों बाद भी
असमंजस/असमर्थता/अपमान में/अपना धरती होने का धर्म
निभा नहीं पाई..... ।"[10]

आधुनिक महानगरीय संस्कृति ने मनुष्य को प्रकृति से बिल्कुल अलग कर दिया। प्रकृति का दोहन, दूसरों के जीने के हक का उल्लंघन व सुविधाओं की उच्चाइओं को प्राप्त करने की अदम्य लालसा के फलस्वरूप मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों में दरार पैदा हुई है। प्रकृति के समस्त वैभव विलुप्त होते जा रहे हैं। 'दरिंदे' कविता में मनुष्य द्वारा किए जाने वाले प्राकृतिक शोषण का वर्णन किया गया है। कवि ने प्राकृतिक पीड़ा को मानवीय धरातल पर महसूस किया है उसे लगता है जैसे पहाड़ो के पंख नोच डालें हो और झरनों को उखाड़ दिया गया हो– "अलग–अलग/पहाड़ों से/झरने उखाड़ यहां रख दिये गए हैं। बिलखते...../ उड़ते पहाड़ों के नुचे पंख/बिखरे पड़े हैं यहां चमकीले /प्रदर्शनी मैदानों में तड़पते परिंदे.....।"[11] 'भूकंप आए तो भय मत करना' कविता में असमय काटे गए पेड़ो की पीड़ा का मार्मिक चित्रण करता है।लेखक ने प्रकृति के साथ मानवीय संबंध स्थापित किया है जो आज के भौतिकवादी युग में एक सराहनीय कदम है। कवि की संवेदना पेड़ों की वेदना को मानवीय धरातल पर महसूस करती है। डॉ. रामदरश मिश्र कवि की प्राकृतिक संवेदना के व्याख्यायित करते हुए लिखते हैं, "बलदेव वंशी शुरू से ही प्रकृति के साथ दिखाई पड़ते हैं– अपनी सर्जना में भी और सोच में भी किन्तु ज्यों–ज्यों प्रकृति से दूर होने वाले मनुष्य का संकट बढ़ता गया प्रकृति के प्रति वंशी की संपृक्ति और अनुरक्ति बढ़ती गई।"[12] कवि वंशी की कविताएं अपने उस आदि अस्तित्व की खोज में है जिसमें प्रकृति और मनुष्य का अस्तित्व निरपेक्ष न होकर सापेक्ष रहा है। वास्तव में ये कविताएं प्रकृति और मनुष्य के चिरंतन संबंध को व्यंजित करती है–

"लगता है/तुम्हारे पैरों के नीचे धरती में
जरूर कहीं जल हैं! यों अपने को समूचा
इस धरती से जोड़कर देखो/यह सारी धरती ही सजल है।"[13]

पर्यावरण संकट को रेखांकित करने के साथ–साथ कवि की पैनी दृष्टि इस संकट के मुख्य कारणों का विश्लेषण करते हुए अर्थ केंन्द्रित पूंजीवादी व्यवस्था पर टिक जाती है क्योंकि इस व्यवस्था की उपभोग वृति और तृष्णा ने पर्यावरण को अपने हितों की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया है। 'सभ्यता के चोर दरवाज़े' कविता में कवि राजनेता, व्यवसायी और बुद्धिजीवी इत्यादि की गलत नीतियों को आधुनिक संकट का कारण मानते हुए अपने भावों को इन शब्दों में व्यक्त करता है–

"सीढ़ियाँ/उतरने/लगे/सभ्यताएं.....
तहखानों में बंदी लोग/इतना पगला जाएं
कि उन्हें छूते ही/हवा के भी कंपन छूट जाएं
युगों की काल –संधियों में/क्रूरताओं के आदिम रूप नए
बीभत्स आकारों में सामने आएँ ।"[14]

"दरअसल वैश्वीकरण और बाज़ारवाद ने आज के मनुष्य को प्रकृ ति के दोहन का ही पाठ सिखाया है, वही उसकी प्रगति का मार्ग है। लेकिन सही अर्थों में वह प्रगति या टैक्नालॉजी का रास्ता

नहीं वरन् वह बाढ़, अकाल, भूकंप और तूफ़ानों का रास्ता है। ऐसी स्थिति में समकालीन कविता अपने स्मृति बिंबों के माध्यम से हमें पर्यावरणीय संवेदना से पुनरू जुड़ने और हमें अपनी जड़ों की और लोटने का संदेश देती है।"[15] 'आदिवासी जंगल में आग' कविता में कवि ने बाजारवादी व्यवस्था के मुखौटों को अनावृत करते हुए बहुत से प्रश्न उठाएं हैं जैसे जंगलों की कटाई स्वार्थ पूर्ति तो करती है परन्तु वहां पर रहने वाले पशु–पक्षियों और बच्चों के घरों और घौंसले के लिए चिंता व्यक्त करता है–

"कुछ दिन पहले/कुछ कारें आई लंबी
बड़े– बड़े लोगों को लाई.....
दूर– दूर तक/अब कभी नहीं दिखे पक्षी।"[16]

नवउदारवादी आर्थिक नीतियों ने व्यक्ति को मंडी की वस्तु बना दिया है। जिसके परिणामस्वरूप प्रकृति और मनुष्य का संबंध भी मंडीकृत हो गया है। पर्यावरण का उपयोग व्यक्ति ने अपने लाभ के लिए करना शुरू कर दिया है। कागज़ के लिए पेड़ो का काटना, चमड़े के लिए जीव–जंतुओं को मारना, धरती पर बहुमंजिली इमारतों को बनाना, नदियों को कूड़ेदान के रूप में इस्तेमाल करना इत्यादि। अर्थात् आधुनिक समय में व्यक्ति की सोच–समझ का केन्द्र केवल पैसा रह गया मूल्य और नैतिकता का इस मंडी के दौर में कोई स्थान नहीं है। 'मंडी' कविता में कुछ इस प्रकार के भावों को अभिव्यक्त किया है–

"जैसे भी हो। चले धंधा। जो भी हो
आकाश में चमके सब। बिके जल्दी।"[17]

विकास संबंधी नई अवधारणाओं ने पर्यावरण को काफी हानि पहुंचाई है। वर्तमान विकास का आधार मात्र पूंजी का विस्तार रह गया है। पूंजी विस्तार के लिए व्यक्ति कुछ भी कर सकता है यहां तक अपने रिश्तों को भी व्यापारिक दृष्टि से देखता हुआ उन्हें भी मंडी की वस्तु बना देता है–

"बेच दो/जो भी बिक सके। लगे हाथ
सब जो बिक रहा है, तो
क्या रखना शेष कल के लिए।
कौन जाने/तब तक बाज़ार बदल जाए
दूध मुंहे शिशु भी।
पाट दे विश्व बाज़ार/पैदा कर लेंगे और
देर मत करो .....
बाज़ार अनुकूल हैं अभी। भाव चढ़े हैं
मंदी नहीं। कहीं ३३३।"[18]

इसलिए कवि आधुनिक सभ्यता को 'खूनी सभ्यता' कहता है। लोग इसमें प्रतिकार और आत्मरक्षा को भूल गए हैं। "कवि के शब्दों में आदमी में जम गई है, आज /सब प्रवृत्तियां। खूनी सभ्यता के प्रतिकार की। आत्म रक्षा की वर्णमाला की अक्षर तक भूल/ गए हैं लोग।"[19] मनुष्य लालच में ग्रस्त होकर जंगलों को बाज़ारों में बदल रहा है। उसके लालच की कोई हद नहीं। इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति कवि 'बेहद' में व्यक्त करता है–

ऊँचे दामों बिकाऊ है
हड्डियाँ/बाल/खाल/खुले हाट बाज़ार...
इधर बाज़ार में जंगल/और जंगल में बाज़ार पसर गया है
जैसे देस में परदेस/और परदेस में देस समा गया है।"[20]

निष्कर्ष

कवि बलदेव वंशी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को रचनात्मक धरातल पर व्यक्त करते हुए आधुनिक सभ्य समाज को चेतावनी देता कि अगर अब भी हमने अपनी जीवन शैली को नहीं बदला, प्रकृति के प्रति आदिम संबंध को पुन स्थापित नहीं किया तो एक दिन मानव का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा। इतना ही नहीं कवि आधुनिक सभ्यता के मुख्य के प्रतिमान उद्योग और टैक्नालॉजी और सत्ताधारियों की गलत नीतियों को भी इसके लिए दोषी मानता है परन्तु इन अंधेरों के बावजूद भी कवि की आस्था मरती नहीं वह कह उठता है–

"दृश्य बदल रहे/तेज़ी में/बिना बताए/समझे
बदलो! कुचले जाओगे/ जल्दी बदलो।
बाहर सब कुछ छूटा जा रहा/ पीछे–
वर्तमान है केवल लंबी छायाएँ
लकड़ी/मिट्टी/लोहा/पत्थर/यही तुम्हारा जहान है।..... ।"[21]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उद्धृतरू वर्तमान साहित्य, सितम्बर 2012, पृ. 79–80
2. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, पृ. 8.
3. आलोक कुमार बंसल, पर्यावरण एवं पर्यावणीय संस्थान, पृ. 129.
4. बलदेव वंशी, समकालीन कविता वैचारिक आयाम, पृ. 26.
5. वीरेन्द्र सिंह, वैचारिक संवेदनाओं का कवि बलदेव वंशी, पृ. 60.
6. वही, पृ. 61.
7. बलदेव वंशी, धरती हाँफ रही है, पृ. 8.
8. वही, पृ. 14.
9. वही, पृ. 17.
10. वही, पृ. 18
11. वही, पृ. 26
12. वही, पृ. 8.
13. वही, पृ. 14.
14. वही, पृ. 17.
15. वही, पृ. 18
16. वही, पृ. 19
17. वही, पृ. 20
18. वही, पृ. 21
19. वही, पृ. 80
20. वही, पृ. 85
21. वही, पृ. 82